अध्याय पहला

उपन्यासकार- प्रेमचन्द

व्यक्तित्व

एवं

कृतित्व

उपन्यासकर - जैनेन्द्रकुमार

व्यक्तित्व और कृतित्व

व्यक्तित्व :-

जैनेंद्र कुमार का मूल नाम आनंदीलाल था । जन्मतिथि २ जनवरी १९०५ मानी जाती है । उनका जन्म उत्तार प्रदेशाके अलीगढ जिला स्थित कौडियागंज स्थान में हुआ । माता का नाम रामदेवीबाई था । पिता का नाम प्यारेलाल था । जैनेन्द्र उनकी तीसरी संतान थी । बडी दो बहनें थीं । पिता को यह मालूम था, कि जैनेन्द्र उनकी मृत्यु की सूचना थी, और वे १९०७ में गुजरे । जैनेंद्रके मामा महात्मा भागवानदीन थे । वे अपने मामाजी को ही पिता मानते थे, वहाँ वे पंद्रहवें सालतक रहे । जैनेन्द्र कुमार का पोषाण १५ वर्षोंतक मामाजी ने ही किया ।

जैनेन्द्रजी का विवाह १९२९ में श्रीमती भागवतीदेवी के साथ हुआ । विवाह से पूर्व उन्होंने पत्नी को देखा न था । माँ के कहने पर इतना ही कहा - " तुमने देख लिया वो काफी है, मुझे इस बारे में कुछ नहीं कहना ।"[1] विवाह में उन्होंने न एक भी पैसा खर्च होने दिया न कोई नया कपडा ही बनने दिया । पूरे विवाह कार्य में दूसरे पक्ष के कुल साढे सत्राह रूपये व्यय हुए थे । विवाह राष्ट्रीय भावना से हुआ, उसमें अग्निसाक्षी या मंत्रोच्चार आदि रीति का पालन नहीं किया गया । भागवतीदेवी यद्यपि अल्प शिक्षित है, लेकिन वे सभी प्रकार की परिस्थितियों में निर्वाह करनेवाली,

१. डॉ. विजयकुलश्रेष्ठ - "जैनेन्द्र - उपन्यास और कला " पृ. २१.

हर प्रकार का श्रम एवं कष्ट सहनेवाली है । जैनेद्रकुमारजी के परिवार में पत्नी के अतिरिक्त तीन कन्याऐं एवं दो पुत्र हैं । माताजी का देहावसान सन १९३५ में हो चुका था । तीनों कन्याऐं कुमुद, कुसुम एवं कनक । दो पुत्र दिलीप-कुमार और प्रदीपकुमार जिसमें बडे दिलीपकुमार स्वर्गस्थ हो चुके थे और प्रदीपकुमार पूर्वोदय प्रकाशन की व्यवस्था संभालते हैं ।

जैनेन्द्रकुमार ने १९११ में हस्तिनापूर स्थित गुरु कुल में प्रवेश किया । जिसकी स्थापना उनके मामा द्वारा की गई थी । कुछ कारणोंसे यह गुरु-कुल १९१८ में बन्द हो गया तो वे अध्ययनार्थ बिकनौर भेजे गये । अगले वर्ष १९१९ में उन्होंनें पंजाब मे मैट्रिक परिक्षा पास की । तदनन्तर उच्चशिक्षा हेतु उन्हें बनारस विश्वविद्यालय भेजा गया । किन्तु कांग्रेस के साथ सहानु-भूति के कारण दो वर्ष बाद वे दिल्ली आये । सन १९२१ में लाला लजपतराय के " तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स " में प्रविष्ट तो हुए लेकिन शीघ्र ही उसे छोड आयें ।

जैनेन्द्रकुमार सन १९२१ में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में कार्य करने पहुँचे । इसी बीच श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, पं. माखनलाल चतुर्वेदी आदि विद्वानोंसे भेंट हुई । तथा उनके व्यक्तित्व से अभिभूत हो गये । पं. माखनलाल चतुर्वेदी के गिरफतार हो जानेपर श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के साथ कांग्रेस का कार्य करना प्रारंभ किया ।

सन १९२३ में उन्होंने नागपूर में महात्मा भगवानदीन के आग्रह पर झण्डा सत्याग्रह में संवाददाता का कार्य किया, परिणामत: उन्हें तथा उनके साथियोंको गिरफ्तार कर लिया गया । तीन माह बाद समझौता हो जाने

पर उन्हें भी मुक्त कर दिया गया । सन १९२७ में महात्मा भगवानदीन के साथ काश्मीर यात्रा की । दिल्ली, कलकत्ता, आदि स्थलों पर नौकरी के लिए भी भटके । सन १९३० में डांडी सत्याग्रह में पुन: जेल गये ।

सन १९३२ के बाद श्री जैनेन्द्र ने राजनीति में भाग नहीं लिया । और फिर जैनेन्द्रजी ने समय का यथा संभव सदुपयोग पुस्तकों से किया । इसी बेबसी में उन्होंने लिखना सीखा । स्व. आचार्य चतुसेन शास्त्री के गद्यकाव्य "अन्तरतल " से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व प्रथम "देश जाग उठा " गद्य काव्य लिखा, जो अज्ञात नाम से "कर्मवीर " में छपने गई थी । कभी कभी मानसिक तनाव की स्थितिमें जैनेन्द्र जी आत्महत्या का विचार करते, लेकिन वृध्दा माँ का विचार आते ही वे अपनी दुरावस्था को झेलते हुए जीवित रहते । उनके जीवन में कुछ दार्शनिकता भी थी । जब भूख लगती तो वे माँ से कहते - " पेट में दर्द हो रहा है ! १ और यही भूख उनके प्रत्येक उपन्यासों में है । उनके उपन्यास की नायिका आत्मपीडन को प्रकट करती है । मामा उनको बन्दर नाम से पुकारते थे । एक दिन घर में दूध न था, जैनेन्द्र ने माँ से दूध माँगा । उन्होंने कह दिया बेटा दूध तो नहीं है, मिठाई ले लो, मठरी ले लो, परन्तु वे किसी तरह राजी नहीं हुए, वह दूध के लिए ही हठ करते रहे । और जब माँ ने फिर यही कहा कि बेटा दूध घर में नहीं है, कहाँ से लाऊँ ? तब वे बोले कि, " दूध टट्टी घर में बखरने के लिए है और मेरे पीने के लिए नहीं ! " २

१." महात्मा भगवानदीन - बाल जैनेन्द्र पृ. ११ ।

२." "महात्मा भगवानदीन - बाल जैनेन्द्र पृ. १० ।

सत्यप्रकाश मिलिंद सूर्य प्रकाशन नई सडक, दिल्ली ।

घर का घर यह सुनकर हँस पडा, क्यों, कि बाल- जैनेन्द्र टट्टीघर में बखेरे हुए फिनाईल को ही दूध समझे हुए थे । फिर पडौस से दूध आने पर ही माने ।

आप शतरंज और पढाई में प्रथम आते थे । दसवें ग्यारहवें साल में गुरु से एक चपत मारी गयी तो इस बेगुनाह का अपमान हुआ । फिर बडे होनेपर जैनेन्द्रजीने साहित्य लिखना शुरू किया । सन १९२९ में " परख " नामक उपन्यास लिखा जिसे ५००-०० रुपये का पुरस्कार मिला । इसके पहले, कि फर्निचर की दूकान बंद की । १९३२ में " सुनीता " १९३६ में "कल्याणी " १९३९ से १९५२ तक लेखन बन्द हुआ । लेकिन वक्तृत्व पर जोर था । १९५९ में दिलीपकुमार ने " पूर्वोदय " प्रकाशन की स्थापना की जिससे जैनेन्द्र लेखन - प्रकाशन करते थे ।

१९५२ में धर्म युग में " सुखदा " उपन्यास धारावाही प्रकाशित हुआ । १९५२ में ही " विवर्त " उपन्यास प्रकाशित हुआ । १९५३ में " व्यतीत ", १९५६ में "जयवर्धन " १९६५ में "मुक्तिबोध " १९६८ में " अनन्तर ", १९७४ में " अनामस्वामी ", १९८५ " दशार्क " । " अनामस्वामी " यह " त्यागपत्र " का उत्तरार्ध माना जाता है । जैनेन्द्र ने १९३९ में दिल्ली के परिषद में भाग लिया । फिर वे युनेस्को कार्यकारणी के प्रथम सदस्य रहे । १९५४ युरोप में भारतीय साहित्य अकादमी के सदस्य रहे । १९५६ में चीन, १९६० में रूस यात्रा, १९६३ में लंका में भारत के प्रतिनिधि रहे । इन्हींको १९७० में डी. लिट. की उपाधि से विभूषित किया तथा १९७६ में " पद्मभूषण " उपाधि से गौरवित किया गया ।

उनके उपन्यासों में नारी को महत्व दिया है । पात्रों की मानसिकता का चित्रण जैनेन्द्र के उपन्यासोंमें हैं । पात्रों को विचित्र प्रकार की अस्तिकता है । ईश्वरी उपासना है, अहिंसा, शांति और सत्य की प्रभावोत्पादकता उपन्यासों में है । जीवन-मृत्यु, सामाजिक मूल्य और आर्थिक मूल्यों से विद्रोह किया है । इसलिए जैनेन्द्र व्यक्ति को श्रेष्ठ मानते है । उन्हें समाज के बंधनों में रहना पसंद नहीं है । अंतरात्मा का सत्य उन्हें प्रिय है ।

जैनेन्द्र को चिंतनशीलता या मनोभावना उनके उपन्यासों में है । साथ ही साथ वे मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषक कथाकार हैं । यही कारण है, कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास को शिल्पविधि को नया आयाम दिया है । उनके संपूर्ण साहित्य में अहंकार और प्रेम का, स्पर्धा और समर्पण का संघर्ष ही निरुपित हुआ है । और अपनी विशिष्ठ अस्तिकता को उन्होंने अपने उपन्यासों में कलात्मक निर्देश भी दिया है । उनके उपन्यासों में पात्र बाह्य जगत का न रहकर अन्तर्मुखी हो उठता है । और उसकी प्रवृत्ति के मूल में उपन्यासकार का ध्यान व्यक्ति की अन्तवृत्तियों को उजागर करने में ही अधिक रहता है । जैनेन्द्रकुमारकी मृत्यु २४ दिसंबर १९८८ को हुई ।

<u>निष्कर्ष :-</u> अपने उपन्यास - सृजन के स्तर पर जैनेन्द्र ने व्यक्ति और समाज को नये मानव मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है । और उन पात्रों के माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक जीवन से निकालकर उन्होंने अलग " व्यक्ति " के "स्व " पर विश्लेषित करने की चेष्टा की है । उन्होंने सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण वैयक्तिक स्तरपर ही किया है । उन्होंने व्यक्ति को केन्द्रीभूत बनाकर अपनी कृतियों में सामाजिक समस्याओंपर प्रकाश डाला है ।

कृतित्व - [जैनेंद्र के उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन]

१] परख - [१९२९]

" परख " उपन्यास जैनेन्द्रकुमार का १९२९ में लिखित प्रथम उपन्यास है, जिसपर उन्होंने ५००-०० रुपयों का पुरस्कार प्राप्त किया था । इस उपन्यास में सत्यधन, कट्टो, बिहारी और गरिमा ये इनेगिने पात्र हैं । कट्टो एक बाल विधवा है । सत्यधन और बिहारी दोनों घनिष्ट मित्र है । सत्यधन आदर्शवादी है, तो बिहारी व्यावहारिक ।

कट्टो सत्यधन से निश्चल प्रेम करती है । इसलिए विधवा होने के बावजूद स्वयं को सधवा समझती है । इसलिए मेले में एक सिंदूर को डिबियाँ और सस्ता दर्पन वह उस दिन ही खरीदती है, परन्तु बिहारी के साथ कश्मीर यात्रा पर जाने के पश्चात बिहारी की बहन गरिमा को सुंदरता के प्रति सत्यधन आकृष्ट हो जाता है । होनहार वकील सत्यधन बिहारी के बाबू की निगाहों में जँचता है, इसलिए गरिमा को मिलनेवाली जायदाद का आकर्षण देखकर वे उसे विवाह के लिए राजी करते हैं । और सत्यधन गरिमा के साथ विवाह निश्चित कर डालता है । परन्तु भीतर ही भीतर कहीं वह स्वयं को अपराधी मानता है । इसलिए बिहारीपर कट्टो को मनाने की जिम्मेदारी सौंप देता है ।

सत्यधन और बिहारी दोनों कश्मीर से वापस आते हैं । सत्यधन गाँव और वहाँ बिहारी का कट्टो से परिचय हो जाता है । बिहारी, सत्यधन और गरिमा के विवाह की बात कट्टो को बता देता है । और तबसे जानता है की कट्टो एक ऐसा रत्न है, जिसे सत्यधन ने धूलि में फेंक दिया है । प्रेम और त्याग की प्रतिमूर्ति कट्टो के प्रति बिहारी स्वयं आकृष्ट हो

जाता है । कट्टो और बिहारी दोनों समाज सेवा में जीवन व्यतित करने का निश्चय करके अलग-अलग राह चलते जाते हैं । बिहारी की संपत्ति कट्टो और बिहारी दोनों सत्यधन को अर्पित करते हैं ।

जैनेन्द्र के उपन्यास की नायिका कट्टो एक आदर्शवादी नायिका है । कट्टो की खुशी सत्यधन की मनोकामना पूर्ण करने में सत्यधन को विवाहित देखकर आनंद माननेमें कट्टो एक प्रकार से आत्मपीडा माँग रही है । और इसी आत्म-पीडन को बढाने के लिए शायद कट्टो उदात्त प्रेम के आदर्श में बिहारी से विवाह भी कर डालती है ।

जैनेन्द्र ने कट्टो में बुध्दी और हृदय के द्वन्द्व में व्यक्ति स्वातंत्र्य और समाज विधान की कठोरता को साकार किया ।

२] <u>सुनीता</u> - [१९३५] सुनीता लेखक का एक बहुचर्चित उपन्यास है । सुनीता उपन्यास की नायिका है । सुनीता के पति श्रीकांत और श्रीकांत का मित्र और सहपाठी हरिप्रसन्न । हरिप्रसन्न एक क्रांतिकारी युवक है । अपने पारिवारिक जीवन के बीच में हरिप्रसन्नको भुला डालना, श्रीकांत के लिए असंभव है । इसलिए श्रीकांत हरिप्रसन्न को अपने घर ले आते है, और हरिप्रसन्नके मन को कामकुंठा तोडकर उसे सामान्य मनुष्य बनाने का प्रयत्न करने के लिए सुनीता को आग्रह करते हैं । सुनीता अपने पति का कहना स्वीकार कर लेती है । और हरिप्रसन्न को अपनी सुंदरता और प्रभावसे प्रभावित करने लगती है । हरिप्रसन्न नारी नामक चीज से अपरिचित था, धीरे धीरे सुनीता के प्रति आकृष्ट हो जाता है । दोनोंका संपर्क बढाने के लिए श्रीकांत विशेष रूप से क्रियाशील है । एक समय जब श्रीकांत बाहर गाँव गये हुए हैं, हरिप्रसन्न सुनीता को क्रांतिकारी कार्य का परिचय कराने के लिए रात के समय सुनीता के घर जाता है । और एकांत पाकर सुनीता को

समुचि प्राप्त करने की इच्छा उसके मन में निर्माण हो जाती है । हरिप्रसन्न के मन की गाँठ खोलने के लिए सुनीता उसके सामने विवस्त्र हो जाती है । परन्तु उसे देखकर हरिप्रसन्न लज्जित हो जाता है । अकेली घर लौटने पर सुनीता श्रीकांत के सामने सत्य बता देती है । परन्तु श्रीकांत हरिप्रसन्न के मन की कुंठा को नष्ट करने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है ।

जैनेन्द्र ने इस उपन्यास में पति परायण पत्नीत्व और प्रेयसीत्व का आंतर-विरोध स्पष्ट करते हुए पति के मित्र की कुंठा से मुक्ति करने के लिए सुनीता के देह समर्पण की उदारता चित्रित है । दूसरी और हरिप्रसन्न अहं और उच्च अहं के संघर्ष में घिरा हुआ दिखाया है । इस संघर्ष से हरिप्रसन्न के मन में यौवनाकर्षण का सुनीता की निर्वस्त्रता से नाश किया । इस उपन्यास को रवींद्रनाथ ठाकुर के " घरे - बाहरे " उपन्यास से प्रभावित माना गया है । ऐसा लगता है, कि घर और बाहर की नारी को जो समस्या है, उसके स्थान पर पति-पत्नी के बीच का आपसी अजनबीपन समस्या बन गयी है । जिसका समाधान बाहरी तत्व हरिप्रसन्नके रूप में मिलता है ।

३] <u>त्यागपत्र</u> - [१९३८] " त्यागपत्र " जैनेन्द्र का तृतीय लघु आकारित उपन्यास है । घर और बाहरी की समस्या को लेकर शिल्प और नारी मूल्य की दिशा मे यह जैनेन्द्र का नया प्रयोग है । नवीनता के स्तर पर " त्यागपत्र " एक आत्मकथात्मक उपन्यास है । सर. एम. दयाल अर्थात प्रमोद अपनी मृणाल बुआ की मृत्यू से अवसन्न होकर अपनी चीफ जजी से त्यागपत्र देता है, क्यों,की अपनी आंतरिक चेतना परिस्थिती की असहनीयता के परमबिन्दू पर पहुँचकर वह आध्यात्मिक संवेदनशील बन जाता है । और अपनी बुआ की मृत्यु के लिए अपनी असमर्थता को जिम्मेदार समझता है । प्रमोद की बुआ मृणाल अनिंध सुंदर है । बचपन से ही मातृपितृ हीन हो गयी है, इसलिए भाई और भावज के घर रहने के

1) कुलश्रेष्ठ विजय - जैनेंद्र के उपन्यासोंकी नारी समस्या, पृ. ७

लिए आ गयी है । और उनके कठोर अनुशासन में असहनीय वेदनासह रही है । स्कूल जाते जाते अपने सहेली के भाई से प्रेम हो जाता है । परन्तु भाभी इस बात को पसंद नहीं करती । इसलिए बड़ी निर्दयता से उसको पिटाई कर देती है । इसके पहले मृणाल ने स्कूल में प्रमोद को मास्टरजी से पिटवा लिया है । लेकिन तब अपनी सहेलीको गलती को छिपाने के लिए वह खुद अपराधी बन गयी है । परन्तु भाभी जब उसका स्कूल बंद कर देती है, तो मृणाल का विद्रोह पड़ता है, और आत्मपीडन भी । मृणाल के भाई के द्वारा एक अधेड़ उम्र के विधूर से विवाह निश्चित किया जाता है । और आत्मपीडा को सहने में ही विद्रोह दिखानेवाली मृणाल पतिगृह को स्वर्ग समझकर ससुराल चली जाती है ।। पति के द्वारा निर्दयता से पीटी जाती है । परित्यक्ता बनती है । फिर मृणाल उसके रूपपर मुग्ध एक कोयलेवाले का आश्रय लेती है । और वह कोयलेवाला भी एक दिन उसे छोड़ देता है । घर आने के लिए प्रमोद का निमंत्रण मृणाला ठुकरा देती है और अपने गर्भ को जन्म देने के लिए मिशन अस्पताल की सहायता स्वीकार कर अधिक आत्मपीडा का अनुभव करती है ।

मृणाल का चरित्र सामाजिक द्रोह के समानान्तर अतृप्ति और आत्मपीडन से अभिव्यक्त है । व्यक्तिवादी चेतना से युक्त मानसिक अधोगति के स्तर पर मृणाल का आत्मपीडन भोगना यथार्थता का प्रतिक है । मृणाल के माध्यम से जैनेन्द्र ने फिर घर और बाहर को समस्या को उठाया है । मृणाल न घर तोड़ना चाहती है न समाज । समाज की मंगलकांक्षा में समाज से अलग होकर वह खुद टूट जाती है ।

देवराज उपाध्याय के अनुसार " त्यागपत्र " एक विचित्र मनोवैज्ञानिक दस्तावेज हैं । जिसमें मृणाल के एक अस्वीकृत, अनावश्यक नारी के रूप में चित्रित है ।

४] कल्याणी - [१९३९] जैनेंद्रका विश्रांतिपूर्व चौथा उपन्यास है । यह भी आत्मकथात्मक शैलीमें अन्य पत्रोल्लेख की प्रविधी अपनाकर लिखा गया है । वकील साहब कल्याणी की कथा प्रस्तुत करते हैं । श्रीमती कल्याणी असरानी महत्वकांक्षी डॉक्टर है, । जो अपने छात्र जीवन में विदेश में एक युवक से प्रेम करने लगी थी वर्तमान में वही भूतपूर्व प्रेमी देश का प्रीमियर है । भारत लौटकर घटनाचक्र में फँसकर कल्याणी डॉ. असरानीसे विवाह कर लेती है । असफल दांम्पत्य में वह पत्नीत्व धारणकर पति के नीचता पूर्ण कृत्यों को सहन करती रहती है । व्यवसाय बुध्दि का पति उसे पत्नीत्व से प्रेयसीत्वकी ओर जाने के लिए प्रीमियर को परपर दावत देता है । अंत मे वह घर-बाहर की समस्या के स्तर पर स्वयं मृणाल की भांति टूटती है ।

कल्याणी एक प्रकार से मृणाल का ही दूसरा संस्करण है । जो घर बचाने की चेष्टा में लीन है । कल्याणी का पति शंकालू और पत्नी निर्भर है । पत्नी के " केरिअरिझम " में न चाहते हुए भी बाधक है । कल्याणी एक विद्रोहिणी नारी के रूप में अपना निजत्व मिटाकर भी केरिअरिझम के स्तर अपने पतिव्रत्य का निर्वाह करती है और परिणामस्वरूप वह निराशा, कुण्ठा, वितृष्णा अपमान और अतृप्ति भोगती है ।

डॉ. देवराज उपाध्याय के मतानुसार कल्याणी में मरण प्रवृति पूर्ण विकसित रूप में सक्रीय है ।

१] उपाध्याय, देवराज [डॉ] जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ. १५९ ।

२] वही पृ. १४५ ।

३] उपाध्याय, देवराज [डॉ.] जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ. १६५ ।

५] सुखदा - [१९५२] यह क्रांन्ति के बाद प्रथम और औपन्यासिक क्रम में पाँचवा उपन्यास है ा यह उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में है ा सुखदा की नारी " सुखदा " कल्याणी, मृणाल से कहीं अधिक सुनीता के अधिक निकट है ा सुखदा किसी माध्यम से नहीं, परन्तु स्वयं अपनी कथा कहती है ा वह एक अच्छे परिवार की युवती है, जिसने अपने पति एवं परिवार के कुछ अपने सपने बनाये हैं पर विवाह डेढ सौ रूपये मासिक पानेवाले युवक कान्त से हो जाता है ा प्रारंभ मे पति प्रेम में वह सब कुछ भूल जाती है। धीरे-धीरे जीवन को वास्तविकताओंका पता चलनेपर स्वयं को खोखला अनुभव करती है ा तभी उसके घरमें नौकर के रूपमे एक क्रांतिकारी आकर रहता है ाा बादमें नौकरी छोड जाने पर वह पुलिस द्वारा पकडा जाता है ा पत्नी इसपर रूष्ट होती है, वह समझती है, कि पति ने पकडा दिया है ा इसी अवधी में आर्थिक वैषम्य उनके सम्बधों को और भी कटु बना देता है ा सुखदा पति के विरोधात्मक और अंकुशरहित व्यवहार से उच्छृंखल बनती चली जाती है ा घर और बाहर की समस्या उभरती है ा जो सुखदा के प्रेम और विवाह पर ही आधारित है ा सुखदा पति के व्यक्तित्व के साथ समाहित नही हो पाती और अंत में क्रांतिकारी मि. लाल को ओर आकृष्ट होती है ा वह क्रांतिदल में सम्मिलित हो जाती है ा

सुखदा मुलत: नैराश्यपूर्ण मनोव्यथा ग्रासित नायिका है ा वह पति-प्रेम को अतृप्तावस्थामें पर-पुरूष प्रेम की अभिलाषिणी बनकर घर छोडकर बाहर जाती है ा क्रांति में विश्वास करके सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट होकर भी वह अतृप्ति अनुभव कराती है ा इस प्रकार घर तो क्षय होता हो है, बाहर भी बिना टूटे नहीं रहता ा सामाजिक जीवन एवं पारिवारिक जीवन में सामंजस्य खोजने की प्रक्रिया में वह नैराश्य भावना का प्रसार करती हुई आत्मपीडा भोगती है ा " १

---

१. नगेंद्र विचार और विश्लेषण पृ. १५२ ा

६] विवर्त - [१९५३] यह क्रान्तिकालद्वितीय और जैनेन्द्र का छठा उपन्यास है । वर्णनात्मक शैली में इस उपन्यास की महत्ता इसलिए भी है, कि जैनेन्द्र ने पुरुष नायक प्रधान प्रथम उपन्यास हिन्दी को दिया है । सारा उपन्यास " जितेन " नामक युवक को केंद्र बनाकर प्रस्तुत किया गया है । जितेन सम्पादकीय विभाग में है, और भुवनमोहिनी रिटायर्ड जज की सन्तान से आकर्षण सूत्रो में आबध्द है । भुवनमोहिनी और जितेन के प्रेमाकर्षण के मध्य अमीरी-गरीबी का अंतर आता है । अत: वर्ग भेद के कारण भुवनमोहिनी का विवाह इंग्लैण्ड से लौटे हुए बैरिस्टर नरेशचन्द्र के साथ हो जाता है । जितेन प्रेम में असफल होकर शहर छोड देता है । और क्रांतिकारी बन जाता है । एक रात में वह ट्रेन उलटकर भुवनमोहिनी के घर में शरण पाता है, तथा वि बीमार हो जाता है । चलते समय उसके आभुषण दल की आवश्यकता हेतु धन प्राप्ति के लिए चुरा लेता है । दल के साथियों से भुवन को अपने गुप्त स्थान-पर बुलाकर आभुषणों के बदले नकद धन की माँग करता है । भुवन का समर्पण उसे पुलिस के सम्मुख आत्मसमर्पण की प्रेरणा देता है । जितेन का दमित काम ही प्रेम के असफलता के कारण उसे क्रांतिकारी बनाता है और उसके कारण ही भुवन में उच्च अहं प्रतिष्ठित होता है । विवाह की विफलता ही भुवन के निजी संघर्षका कारण बन जाता है । ऐसा प्रतित होता है कि, सुखदा के समान्तर ही कथा यहाँ है । क्रान्तिकथा, आर्थिक वैषम्य, प्रेम व्यवहारादि समान ही है ।

सुखदा की अहंवादी चेतना की सामाजिक या वैवाहिक विस्थिति-योंकी परिणती इस कृति की भुवन में उपलब्ध होती है । इस कृति में जैनेन्द्र ने स्वयं क्रांति का उल्लेख " समाज की नींद तोडने का एक अस्त्र " कहा है ।

---

१ " विवर्त " जैनेन्द्रकुमार पृ. ४७

७] व्यतीत [१९५३] यह विश्रांति बाद तृतीय और जैनेन्द्र का सातवाँ उपन्यास है जो पुन: आत्मकथात्मक शैली में नायक जयंत द्वारा प्रस्तुत किया गया है । अनीता जयन्त की प्रेमिका है और उनका विवाह मि. पुरी से हो जाता है । अनीता मि. पुरी की विवाहिता होकर भी जयन्त की चिंता में लीन रहती है । जयन्त पचहत्तर रुपये मासिक पर एक समाचार-पत्र में सह सम्पादक के रूप में कार्य करता है । अनीता उसे वहाँ से ले जाने और मनाने आती है । पर वह नौकरी छोड़कर नहीं जाता । पिता की मृत्यु के अवसर पर अनीता चाहती है, कि जयन्त विवाह करके गृहस्थ बने ।

तभी उसके जीवन में कुमार के माध्यम से उसकी चचेरी बहन चन्द्री आती है, जिससे वह विवाह तो करता है, पर सामंजस्य नहीं कर पाता और पत्नी-विमुख होकर वह सेना में कमिशन पाकर युध्द में चला जाता है । घायल होकर अस्पताल में पड़े होने पर चन्द्री सेवा करती है वहीं अनीता आती है । और वह चन्द्री को अपनाने के लिए स्वयं जयन्त को होटल में देह समर्पण करती है । तभी जयन्त विरक्त हो जाता है । जयन्त की यौनाकांक्षा की परिपूर्णता में सहाय्यक होकर अनीता प्रिय के प्रेमदाह को अपनी देहताप द्वारा खंण्डित होने से १ बचाती हुई पत्नीत्व से प्रेयसीयत्व में जाती है । इस कृति में भी उपन्यासकार ने बुध्दि और हृदय या भावना जगत और व्यवहार-जगत के संघर्ष के आलोक में जीवन की व्यर्थता का चित्रण किया है ।

---

१. कुलश्रेष्ठ विजय - जैनेन्द्र के उपन्यासों की फ्रायडीय नारी, साहित्य संदेश, पृ. ४५४ ।

२. जैनेन्द्र की नारी समस्या - युगबोधक पृ. ८.

८] जयवर्धन [१९५६] यह क्रान्ति बाद-चतुर्थ एवं जैनेन्द्र का आठवाँ उपन्यास है, जो उपन्यासकार की निरन्तर विकसित दार्शनिक चिन्तन और गांधीवादी चिन्तन की परिणति है । यह उपन्यास अत्यंत चर्चित रहा है । डायरीशैली के माध्यमसे इसे अपनी विशिष्ट प्रविधिमें एक अमेरिकन पत्रकार - " विल्बट शोल्डन हूस्टन " द्वारा जयवर्धन के जीवन को झांकी के रूपमें प्रस्तुत किया गया है । यह अब तक प्रकाशित जैनेन्द्र के उपन्यासों में सर्वाधिक बहुलाकारीय उपन्यास है । जिसका परिप्रेक्ष घर-बाहर के समाधान और क्रान्ति के स्तरपर पलायनवादी वृत्तिके समानान्तर राजनीतिक एवं समसामायिक बोध से अनुप्रेरित है । १ जयवर्धन राष्ट्राधिप है, जो विवाह संस्थान में विश्वास नहीं करता है । इला के संघर्ष - सम्पर्क में निरन्तर रहते हुए अपने विरोधियों के प्रति प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही से विमुख रहता है ।

राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विरोधजन्य परिस्थितीका आकलन होनेपर भी वह स्वहीन रहकर राज्य सत्ता को निर्मल्य करता है । इला के पिता आचार्य भी जय के विरुध्द हैं । पर पुत्री के कारण विरोध प्रकट नहीं करते । भारतीय संस्कृति के पुजारी चिदानन्द भी विरोधी हैं । जिसका विरोध मूलत: इला के ही कारण है । तीसरा प्रतिगामी दलनाथ दम्पति का है, जो प्रारंभ में विरोधी है । जो श्रीमती [एलिजाबेथ] की महत्वाकांक्षा और जय के प्रति यौनाकर्षण के स्तरपर जय का सहयोगी बन जाता है। वह श्रीनाथ को छोडकर जय का संसर्ग पाने का आकांक्षी है । जय राष्ट्राधिप के पद् को अनावश्यक मानते हुए, पद त्यागकर सर्वदलीय सरकार बनाने के लिए राष्ट्र के सभी दलोंको आहवान करता है । इसी अवसरपर आचार्य जय को इला के साथ विवाह को स्वीकृति प्रदान करते हैं ।

---

१. कुलश्रेष्ठ विजय [डा] जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना, पृ. ५६ ।

स्वामी चिदानन्द पद त्याग को महत्व नहीं देते । जय सर्व दलीय नेतृत्व करने का आग्रह चिदानन्द से करके उसी रात स्वयं गायब हो जाता है । इस उपन्यास की सबसे बडी विशेषता यह है, कि यह पूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें एक ओर प्रेम और विवाह का अन्तर्द्वन्द्व है । यह अन्तर्द्वन्द्व जैनेन्द्रीय प्रेम के ढाँचे से अनुप्रेरित है, तथा जय के निजत्व का निर्माण करता है ।"१ जयवर्धन की सर्वाधिक विचारणीय वस्तु है आज के युग एक चुभनेवाली सच्चाई यानी राजसत्ता भी । असलियत और व्यक्ति के साथ उसके सम्बन्धों की छान बीन जो इसे व्यक्तिवादी उपन्यास सिध्द करती है । २

राजनीतिक स्पर्श इस उपन्यास में है, पर वह अनेक स्वार्थो एवं दलों के बीच जयवर्धन की स्थिती को उलझाती है, जय स्वलीन और वैयक्तिवादी है । दलीय स्वार्थों के संघर्ष के समय की वह निष्क्रिय द्रष्टा बना रहकर अकर्मक राजतंत्रकी स्थितिमें दलीय संघर्षों को सम-स्थिती में लाने के लिए राष्ट्राधिप के पद को त्याग करता है । और राजनीति को अपने निजत्व से अधिक नहीं होने देता है ।

---

१. कुलश्रेष्ठ विजय - जयवर्धन वस्तु और विचार, पृ. ४३-४५ ।

२. मिश्र रामदरश [डा] [सं] : जयवर्धन की पहचान पृ. २१ ।

३. कुलश्रेष्ठ विजय - जयवर्धन की पहचान पृ. ३९ ।

९] मुक्तिबोध [१९६५] - " जयवर्धन के बाद दस वर्ष के पश्चात लिखा गया उपन्यास जैनेन्द्र के राजनीतिक, सामाजिक बोध को और उनके जीवन दर्शन को उजागर करता है । यह उपन्यास भारत की केन्द्रीय सत्ता में होने-वाले वैशिष्ठ्य परिवर्तनों की आवश्यकता और प्रतिक्रिया इनका एक जीता जागता आलेख है ।" १

मुक्तिबोध का नायक सहाय एक केन्द्रीय सदस्य और मंत्री होने के बावजूद गाँधीवादी विचार धारा से प्रभावित था । अपने दल में पद-लिप्सा की होड़ देखकर और गान्धीवादी सिध्दान्तों के विरुध्द आचरण देखकर उसका मन परविमुख बन गया । अत: वह अपने पद का त्यागपत्र देने का निर्णय घोषित करता है । उसकी निर्णय की घोषणा से ही उसका परिवेश अप्त और मित्रजन विचलित हो उठते हैं । और पारिवारिक सदस्य क्षेत्रीय प्रतिनिधि प्रस्थापित मंत्रिमंडल के सहयोग से सदस्य बने रहने पर तथा मन्त्रीपद न छोडने पर जोर देने लगते हैं, क्यों, कि उनके मतानुसार व्यक्ति की अपेक्षा पद की प्रतिष्ठा अधिक होती है । इसलिए " सहाय " त्यागपत्र न दे तो दल की राजनीति को सुविधाजनक रहेगा । अपने निर्णय का विरोध देखकर " हाँ " या " ना " के द्वन्द्व में आन्दोलन होने लगता है । और आत्मनिर्णय की समस्या का शिकार हो जाता है ।

---

१. शर्मा, आचार्य विनयमोहन - " मुक्तिबोध " उपन्यास की विवेचना पृ. ३९-२ ।

उसकी पत्नी, पुत्री, जामात, पुत्री की सहेली उस का बेटा, उसके मित्र और मंत्रीगण आदि का दबाव वह अनुभव कर लेता है । उसकी भूतपूर्व प्रेयसी नीलिमा सहाय को अंतर्मुख बना डालती है, और सूचित करती है, कि मंत्रीपद छोडना, प्राप्त परिस्थितियों से पलायन करना है ।

जैनेन्द्र कुमार ने हमेशा को घर और बाहर की विषमताओं के परे व्यक्ति के अन्तरबला का चित्रण किया है । सहाय की आत्मपीडा का चित्रण उपन्यास को उपलब्धि है । पूरे उपन्यास का कथानक सिर्फ चार दिनों के अवकाश में घटित होता है ।

१०] अनन्तर [१९६८] इसे जयवर्धन उपन्यास में प्रकट विचारधारा को विकसित तथा प्रौढ कृति कहा जाता है । यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है । उपन्यास का नायक प्रसाद उनके पुत्र और पुत्रवधु को जो मधुपूर्व मनाने के लिए जा रहे हैं, उनको स्टेशनपर विदा करने जाता है । और वहाँ से लौटते हुए अपने जीवन की व्यर्थता को अनुभव करता है ।

व्यर्थता बोध की स्थिति में वह पलायन का मार्ग अपनाना चाहता है । और अपने गुरु आनन्दमाधव और अपरा का प्रस्ताव सुनकर माउँट अबूपर उनको ले चलता है । प्रसाद अन्त:मुखी चेतना से ग्रस्त हैं । जयवर्धन और मुक्तिबोध उपन्यास के समान राजसत्तात्मक बोध के स्तरपर वह व्यक्ति मुक्ति चाहता है, परन्तु अपरा के माध्यम से माउँट अबूपर विरक्तता के स्तर इनव्हॉलिमेंट खोजना चाहता है । प्रसाद के लिए नारी का स्वेच्छाचार अन्तकरणपूर्ण बातें है । परन्तु अपनी पुत्री चारु के नारीत्व का दूसरे के सामने समर्पण अपने घर के निर्माण के लिए योग्य समझकर उसका स्वीकार करता है ।

जिस प्रकार कल्याणी में तपोवन, जयवर्धन में शिवधाम और मुक्तिबोध में सहाय के गाँव में जाकर रहने की इच्छा प्रकट की गयी है, प्रसाद शिवधाम को केवल इच्छा ही प्रकट नहीं करता है, तो उसकी स्थापना भी करता है ।

यह प्रसाद का पारिवारिक स्तर पर अपने अन्तरजगत से अपने बाह्य को जोडने का प्रयास हैं ।

११] अनामस्वामी - [१९७४] " त्यागपत्र " के प्रमोद के त्यागपत्र देने के पश्चात के जीवन का चित्रण इस उपन्यास में किया गया हैं, प्रथम एक दो परिच्छेदों में चिन्तन, परख, विश्लेषण प्राप्त होता है ; और कथात्मकता नगण्य है । फिर से बारह परिच्छेद लिखकर कथात्मकता का आशय प्रकट किया है ।

प्रमोद के बालजीवन का एक साथी प्रबोध अब " अनामस्वामी " है । उसका एक आश्रम है, जिसमें अहंकार और अहंता ज्वार से मुक्त जीवन जीने की कल्पना साकार करने का प्रयत्न किया गया है ।

अनामस्वामी आश्रम की छोटी-छोटी बातों का खयाल रखता है, जिसे जैसे प्रमोद को उसकी बुआ मृणाल के अन्तसमय पर उपस्थित रहने का संकेत देना । अपनी विधवा पुत्री की बेटी " उदिता " को आश्रम जाने के लिए प्रोत्साहित करता है । परन्तु " उदिता " अपने आध्यात्मिक गुरु शंकर उपाध्याय से प्रभावित है । शंकर और अनामस्वामी में बहुत तीव्र ईर्ष्या है, जिस के कारण राणी वसुन्धरा जो शंकर उपाध्याय की भक्त है, और उन्हीं के दूसरे भक्त कुमार की विवाहित है ।

राणी वसुन्धरा मातृत्व प्राप्त करें, इस प्रकार की इच्छा कुमार के मनमें वियोग के द्वारा शंकर से पुत्र प्राप्ति की अनुमति कुमार से वसुन्धरा को

मिलती है, परन्तु शंकर द्वारा वसुन्धरा का समर्पण ठुकराया जाता है, अपितु शंकर उपाध्याय वसुन्धरा के हत्या का कारण बन जाता है ।

इसके साथ ही शंकर " उदिता " को अपने भतीजे के साथ मुक्त सहचार के लिए विदेश भेजता है । और अन्त में अपने जीवन की उलझनों से त्रस्त होकर आत्महत्या कर डालता है ।

इधर विदेश में उदिता अनेक प्रेमों में असफलता पाकर विवाह का स्वीकार करती है । और वापस आकर अपने गुरु शंकर का स्मारक बनाने में लीन हो जाती है ।

१२] दशार्क [१९८५] :- जैनेन्द्र का " दशार्क " अन्तिम उपन्यास है । भाषा, कथा, शैली, शिल्प और मिजाज साथ ही साथ तेवर में तीखा वेधक और क्रान्तदर्शी कृति है ।

उपन्यास की नायिका रंजना एम. ए. एल. एल. बी. है, उसका विवाह शेखर के साथ होता है । जो विश्वविद्यालय में लेक्चरर है । रन्जना के पिता अमीर है, उन्हों के पास सब कुछ है । अपने श्वसुर जैसा अमीर बनने के चक्कर में शेखर जुआ खेलना शुरु करता है, कुछ दिन बाद वह जुए में हारता है, इसी कारण उसको घर की सभी जायदाद भी बिकनी पड़ती है, और शेखर शराबी बनता है । तब रंजना अपने पिता के पास जाती है, शेखर उसे घर ले आना चाहता है, लेकिन रन्जना आने को तैयार नहीं है अपना पति और पुत्र आलोक इन्हीं के बारे में रंजना सोचने को बिलकुल राजी नहीं है, तब शेखर गुस्से से कहता है " तुम अपने को क्या समझती हो ? आखिर मैं आदमी हूँ, अपना काम करता हूँ । और क्या चाहिए ? जिंदगी में उतार-चढ़ाव आते ही हैं, तो क्या आदमी को जलील किया जाता है, तुम्हारे बाप

बडे हैं, खानदान बडा है, तो क्या मैं कुछ माँगने जाता हूँ । बडे है तो, अपने घर के हैं । पर जिन्दगी गुजारनी है मेरे साथ, या बाप के साथ ? आखिर रहना मेरे मुताबिक होगा, कि नहीं"?[1]

रंजना में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ वह अब ऐसा परिवार तोडना नहीं चाहती । उसका विचार है कि सम्बन्ध भी न टूटे और आर्थिक प्राप्ति भी हो जाये । इस निर्णय के साथ रन्जना पिता के घर से बाहर पडती है, उसे न पति की चिन्ता है, न पुत्र की न पिता की । वह खुद अपने बारे में सोचकर एक निर्णय के साथ वेश्या बन जाती है । जो पहले सरस्वति थी, अब वह लोगोंका रन्जन करने के लिए " रंजना " बन गयी है, उसकी फीस एक हजार रुपये है । कुछ दिन के बाद वह पैसेवाली बनती है, उसका ऑफिस है, सचिव है, गाडी, फोन सब कुछ है, समाज में जो गरीब हैं उन्हींकी सहायता करती है । " बेला " नामक लडकी की शादी दहेज के रुपये न मिलनेपर न होनेवाली थी, तब रन्जना दहेज के तीन हजार रुपये देती है । नगर में भागिनी समाज संस्था की अध्यक्षा शेफालिका रंजना से पाँच हजार रुपये लेकर जाती है । वह खुद की जिन्दगी और कुछ समाज सेवा वगैरा कर रही थी लेकिन दूसरी बार उसकी जिन्दगी में मोड आ गया । नगर के अमीर सेठ जिसकी चार मिलें हैं, वह एक दिन रन्जना के पास आकर रंजना को पाँच लाख रुपये को खरीदना चाहता है, हमेशा के लिए इस बात का रन्जना ने इन्कार करने से संघर्ष छिड जाता है । माणिकलाल सेठ अखबार पत्रकार इन्हीं के माध्यम से रन्जना के खिलाफ आवाज उठाता है, बन्द, हडताल, घेराव, दंगा सब चलता है । रंजना के बिरादरी के मेहन्दीबाई, मालती, सकिना ये सब लोग बन्द के कारण भूख से त्रस्त है, उन्होंके लिए

1. दशार्क जैनेंद्रकुमार पृ. ९२ ।

रन्जना माणिकलाल सेठ को मिलने नगर के एक बडे होटल में पैसे माँगने जाती है, तब सेठ शराब पीकर रन्जना को बहुत मारता है, रन्जना के बाल, वस्त्र सब बिखर जाते हैं, रन्जना को सिर्फ मार खाकर ही वापस आना पडता है । पैसे नहीं मिलते, वह पैसे इन भूखी वेश्याओं को देने के लिए ही सेठ को पैसे माँगने रन्जना गयी थी । नगर में बहुत शोर-शराबी चल रहा है । अखबार में रन्जना की और उसके मकान को तस्वीर आयी हैं । देश के गृहमन्त्री महोदय आकर रन्जना को शहर छोडकर जाने को कहते हैं ।

रन्जना को सिर्फ मानेकलाल जैसे सेठ ही परेशान करते है हैं, ऐसी बात नहीं, पुलिस अफसर, मन्त्री के सचिव के सहायक सब लोग परेशान करते हैं । उसको मारते है, गालियाँ देते हैं । कुछ दिन के बाद नगर शान्त हो जाता है, सब समस्या ही खत्म हो जाती है । स्मगलर माधवराव कालीचरण सब बिरादरी के लोग रन्जना की सहायता करते हैं । फिर एक दिन गृहमन्त्री महोदय रन्जना को उसके पति शेखर का स्वीकार करने के लिए कहते हैं । क्यों, कि उसकी हालत बहुत दयनीय बन गयी है, वह इधर उधर भटक रहा है, तब रन्जना पूछती है, वे कहाँ है ? कहने के साथ रन्जना मन्त्री के चरण की धूल अपने माथेपर लगाती है, उन्हें पिता और श्वसुर दोनों रूप में देखती है, और उपन्यास खत्म होता है ।

निष्कर्ष :- जैनेन्द्र ने प्रथम चार उपन्यासों में अपने चिन्तन के अनवरत विकास का चित्रण किया है । " परख " उपन्यास में जो मनोविश्लेषण है, उसके साथ उपन्यासकार की उपस्थित एक " साम्यवादिक " रूप में प्रतीत होती है । आगे के क्रमों का उपन्यासों में जैनेन्द्र ने इस प्रवृत्ति से मुक्ति पा ली है ।

मन की अन्तरंगता के चित्रण के स्तर पर उत्तम पुरुष शैली अपनाकर उपन्यासकार ने आत्मकथात्मकता पर बल दिया है। परख, सुनीता और विवर्त को छोडकर किसी न किसी माध्यम से आत्मकथा के रूप में कथा प्रस्तुत की गयी है। मन की अन्तरंगता के स्तर पर उपन्यासकार ने वैयक्तिक जीवन दर्शन एवं जीवन मूल्यों की स्थापना की है।

कामवासना के आकर्षण के स्तर पर काम के दंश से पीडित समाज को मुक्त करने के लिए स्वार्पण की आधार भूमि देकर आत्मपीडक चेतना से अहं विगलन की नवीन दिशा प्रतिपादित की है। काम आसक्ति से प्राय: सभी पात्र पीडित हैं और उसी से जीवन के प्रति जो विद्रोहात्मक रूप है, वह रतिदान या देहदान से विगलित होता है।

कथावस्तु की महत्ता मनोविश्लेषण की स्थितिपर नगण्य या अल्प हो गई है, और जो भी कथा आधार रूप में उपलब्ध होती है, इसमें श्रृंखलता मिलती नहीं। सुसंगठित कथावस्तु का अभाव जैनेन्द्र की विशेषता है।

वर्णनात्मकताके स्थानपर मनोविश्लेषण के परिप्रेक्ष में नाटकिय घटनात्मक, पूर्वदीप्ति एवं चेतना प्रवाहात्मक शैलियों का प्रयोग किया है।

समस्त उपन्यासों के पर्यवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनेन्द्र विशिष्ट गाँधीवादी सैध्दान्तिकता अपने व्यावहारिक पक्ष को विचित्र आदर्शवादी मुद्रामें व्यंजित होती है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, औपन्यासिक धारा एक सुनिश्चित कथात्मक परंपरा, अभिव्यक्ति का स्तर एवं दार्शनिक चिंतन से परिपूर्ण है, और वह अपने पात्रों की प्रतिक्रियात्मक सचेतना को अतिवाद की स्थिती तक ले जाकर छोडती है। तभी उनके पात्र वैयक्तिक अधिक हैं और सामाजिक कम।